मुक्तिबोध की कविताओं में मानवीय संवेदना

रवि शंकर शुक्ल
शोध-छात्र हिंदी विभाग
उत्तर बंग विश्वविद्यालय
जिला दार्जिलिंग, पश्चिम बंगाल
पिन- 734013 मो. 9614889085

मुक्तिबोध की कविताओं की संरचना मन और मस्तिष्क को बेचैन कर देने वाले अंत:संघर्ष तथा व्यक्तित्व के साधना से निर्मित है। इनकी कविताओं की जटिलता इसी अंत:संघर्ष की देन है। मुक्तिबोध का काव्य ऐसी परिस्थितियों और चुनौतियों को स्वीकार्य करता है तथा अपने युग की भयावहता को पूरी दृढ़ता के साथ समय और समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है।

मुक्तिबोध के रचना संसार के साथ हमेशा एक बात जुड़ी है कि वह हर नए पाठक के पास उसी परंपरा के साथ आती है जोकि पिछली मान्यताओं ने प्रचलित की है| इस संदर्भ में अपूर्वानंद कहते हैं "उनकी किताब का दुर्बोध होना ऐसी मान्यता है जो पिछली पाठक-पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को सौपती है, बल्कि इसे मान्यता से ज्यादा तथ्य मान लिया गया है।"[1]

समान्यत: संवेदना से हमें सहानुभूति का आभास होने लगता हैं और जिसका भाव भावुकता, भावप्रवणता होता है। किंतु "संवेदना" शब्द भावुकता और भावप्रवणता तक सीमित न होकर ज्ञान और विवेक को भी अपने में समाहित कर लेता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संवेदना शब्द में बौद्धिक चेतेना भी समाविष्ट होती है। मुक्तिबोध ने अपने साहित्यिक डायरी में उल्लेख करते हुए लिखा है-"मानसिक प्रतिक्रिया में संवेदना अंतर्भूत है, किंतु उसमें दृष्टि या दृष्टिकोण भी अंतर्भूत है।[2]

मुक्तिबोध की चेतेना अनेक स्तरों पर संघर्ष के लिए हमें जागृत करती है। मुक्तिबोध संघर्ष को जन-सामान्य की तरफ से शुरुआत करते हुए चाँद का मुँह टेढ़ा है में लिखते हैं-

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीर है,
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में,
महाकाव्य पीड़ा है,
पल-पल मैं सब से गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में से तिर आना चाहता हूँ[3]

मुक्तिबोध को जनसधारण से अत्यधिक लगाव के कारण आज की आर्थिक व्यवस्था से जन्मे एवं पालितपोषित उच्चवर्गीय समाज से अपने को दूर कर लेते हैं। "मैं तुम लोगों से दूर हूँ" कविता में मुक्तिबोध कहते हैं-

मैं तुम लोगों से इतना दूर हूँ
तुम्हारी प्रेरणाओं से मेरी प्रेरणा इतनी भिन्न है
कि जो तुम्हारे लिए विष है, मेरे लिए अन्न है।" [4]

मुक्तिबोध उच्चवर्गीय समाज से जुड़े एवं ऐसे अवसरवादी विद्वानों, कवियों, और आलोचकों की आलोचना करते, जो बाजार का तो विरोध करते हैं और उस बाजार के माध्यम से खुद की मार्केटिंग करते हैं। 'भूल गलती' कविता में लिखते हैं कि-

सब खामोश
मनसबदार
शाइर और सूफी
अल ग़ज़ाली, इब्ने सिन्ना, अलबरूनी
आलिमो फ़ाज़िल सिपहसलार, सब सरदार
हैं खामोश!! [5]

'भूल गलती' कविता हमारे समाज एवं व्यक्ति के अंत:करण में मौजूद अवसरवादी कुव्यवस्था का स्पष्ट उदाहरण है। आज हम सभी अवसरवादिता के कारण अपने ईमान को ही निर्वासित कर दिया है, क्योंकि आज संक्रमण के जिस दौर में हम जी रहे हैं, इसमें अवसरवादी मानव का ही जन्म हो सकता है। मुक्तिबोध अवसरवादिता के इस लक्षण को पहचानते हैं और नई कविता का आत्मसंघर्ष में लिखते हैं- "आज शिक्षित मध्यवर्ग में जो भयानक अवसरवाद छाया हुआ है, आत्मस्वातंत्र्य के नाम पर जो स्व-हित, स्व-कल्याण की जो भाग-दौड़ मची हुई है, मारो खाओ, हाथ मत आओ का जो सिद्धांत सक्रिय हो उठा है, उसके कारण कवियों का ध्यान केवल निज मन पर केंद्रित हो जाता है।"[6]

मुक्तिबोध ने 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता के माध्यम से छद्म आधुनिकीकरण पर प्रहार किया है। इस कविता के चाँद और चाँदनी किसी रोमांटिक भावों को जन्म नहीं देतें, बल्कि ऐसे कठोर समाज को दर्शाते हैं जिसमें सन्नाटा है, करफ्यू है, भय है, षडयंत्र है। यह चाँदनी गोरे रंग से युक्त मन को मुग्ध करनेवाली नायिका न होकर शोहदे आवारा मछुओं सी है। मुक्तिबोध लिखते हैं-

टेढ़े मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी
भीमाकार पुलों के
ठीक नीचे बैठकर,
चोरों-सी उचक्कों-सी
नालों और झरनों के तटों पर
किनारे-किनारे चल
पानी पर झुके हुए
पेड़ों के नीचे बैठ
रात-बे-रात वह
मछलियाँ फँसाती है
आवारा मछुओं-सी शोहदों-सी चाँदनी। [7]

राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजिक शोषण और भ्रष्टाचार को मुक्तिबोध ने अपनी कविता बारह बजे रात के दिखाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है इस कविता में चाँद अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस कविता का चाँद आसमानी तख्त पर सुल्तान के रूप में विराजमान है-

आसमानी तख्त पर सुल्तान
चाँद वह
दमकते लालटेनी रंग के गाल लिए
सोने की गिन्नी-से चेहरे का
आकाशी तानाशाह
धरती पर नजर डाल
सोचता, समझता-सा
मुसकाता देखता
यूरोपीय सभ्यता के भवनों का भव्य ठाठ[8]

यहाँ अंग्रेजी साम्राज्यवादीरूपी चाँद आकर पृथ्वी पर बढ़ते हुए अपने साम्राज्य को देखर प्रसन्न हो रहा है। मुक्तिबोध हमारे शहरों में मौजूद सभ्यता के नाम पर रिश्तों के खोखलेपन को पहचान लेते हैं। वे हमारे गाँव में बसनेवाले आपसी लगाव और आत्मियता को महत्व देते हैं। वे कविता में लिखते हैं-

"कि समस्त स्वर्गीय चमचमाते आभा लोकवाले
इस नगर का निजत्व जादुई
कि रंगीन मयाओं का प्रदीप्त पुँज यह
नगर है अयथार्थ" [9]

इन नगरों में रहने वाले लोग सभ्यता का बनावटी मुखौटा पहने हुए हैं और उन मुखौटों में अपनी वास्तविक पहचान को छिपाए हुए हैं-

"पावडर में सफेद अथवा गुलाबी
छिपे बड़े-बड़े चेचक के दाग़ मुझे दीखते हैं
सभ्यता के चेहरे पर।
संस्कृति के सुवासित आधुनिकतम वस्त्रों के
अंदर का वासी वह
नग्न अति बर्बर देह
सूखा हुआ रोगीला पंजर मुझे दिखता है" [10]

ऐसे मुखौटों को लागए हुए शहरीय सभ्यता से कवि मुक्तिबोध का मन व्यथित होता है, क्योंकि मुक्तिबोध आडंबर से अपने को अलग रखनेवाले कवियों में से हैं। अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि "मुक्तिबोध मनुष्य की संपूर्ण हालत के कवि थें। उन्होंने ने मानवीय अंत:करण को पक्षाघात-ग्रस्त देखा, पर यह नहीं माना कि वह मर चुका है, बल्कि पूरे गहराई के साथ उन्होंने उम्मीद की और इशास किया कि वह होश में लाया जा सकता है और उसका पुनर्वास किया जा सकता है।" [11]

कवि मुक्तिबोध की संवेदना आनेवाले कल के लिए भी संकल्पित है, क्योंकि उन्हें लगता है-

आत्म विस्तार यह
बेकार नहीं जाएगा।
जमीन में खड़े हुए देहों की खाक से
शरीर की मिट्टी से, धूल से।
खिलेंगे गुलाबी फूल
सही है की हम पहचाने नहीं जाएँगे।
दुनिया में नाम कमाने के लिए
कभी कोई फूल नहीं खिलता है
हृदयानुभव-राग-अरूण
गुलाबी फूल, प्रकृति के गंध-कोष
काश, हम बन सकें। [12]

भविष्य के प्रति इतना आस्थावान संकल्पित यह कवि 'नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' में वर्तमान के कवियों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि उसे "वास्तविक जीवन में अपनी कायरता, साहसहीनता, अकर्मण्यता त्यागकर समाज में फैले अवसरवाद से मोर्चा लेते हुए मानवीय समस्याओं से दुखाभिभूत और करूणापन्न होकर उसे वास्तविक मानव जीवन के मूल्यों और आदर्शों के मार्ग पर चलना ही होगा। हो सकता है कि इस स्थिति में हम मर जाए और हो सके उसके नाम से रोनेवाला भी कोई न हो। लेकिन कुछ लोगों को इस तरह जमीन में गड़ना होगा ही। इस तैयारी के साथ, इस दम के साथ यदि हमारा नया कवि मूल्य-व्यवस्था विकसित करते हुए मानव समस्या चित्रित करता है तो निस्संदेह वह युग परिवर्तन करने का श्रेय भागी होगा-भले ही उसे श्रेय मिले या न मिले।"[13]

मुक्तिबोध की अधिकांश कविताएं आत्मशोध की हुई प्रतीत होती हैं । मुक्तिबोध एक आत्मान्वेषी कवि हैं और यह आत्मानवेषण हम 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' पुस्तक की अनेक कविताओं, जैसे- ब्रह्म-राक्षस, लकडी का बना रावण, अँधेरेमें आदि में देख सकते हैं।

आज हमारा समाज अहं की पराकाष्ठा पहुँच चुका है और अपने आप को सर्वशक्तिमान समझने लगता है। मुक्तिबोध की कविता 'लकड़ी का बना रावण' ऐसे ही अहं से युक्त व्यक्तित्व की खोखली मानसिकता को दिखाती है। इस कविता का नायक अनुभव करता है कि

मैं ही वह विराट पुरुष हूँ
सर्व-तंत्र, स्वतंत्र, सत-चित,
मेरे इन अनाकार कंधों पर विराजमान
खड़ा है सुनील
शून्य
रवि-चंद्र तारा- द्युति मंडलों के परे तक [14]

इस कविता का "मैं" पूँजीवादी-संस्कृति का प्रतिनिधि है।

मुक्तिबोध की काव्य संवेदना सामान्य जनमानस की वेदना को समेटता हुआ आगे बढ़ता चलता है। इनकी कविताओं में निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति को देखा जा सकता है, यह समाज जो होना चाहता है अथवा जो करना चाहता है इसी का द्वंद्व इनकी कविताओं में मिलता है।

व्यक्ति और समाज को शोषण मुक्त और सुख से युक्त देखने के लिए मुक्तिबोध सब कुछ महसूस करके उसे समेट लेना चाहते हैं। इसी वजह से इनकी कविताओं में अंतर्विरोध दिखता है, "लेकिन अंतर्विरोधों के रहते हुए भी कवि महान हो सकता है, बशर्ते वह अपने अंतर्विरोध को पहचान कर उसे दूर करने का प्रयास करे। यह बात और है कि उसे अपने प्रयासों से सफलता मिलती है या नहीं। मुक्तिबोध अपने अंतर्विरोधों को दूर करने के लिए सक्रिय हैं।"[15] इसलिए वे 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में कहते हैं-

" मेरे इस साँवले चेहरे पर कीचड़ के धब्बे हैं,
दाग हैं
और इस फैली हुई हथेली पर आग है
अग्नि विवेक की।
नहीं, नहीं, वह-वह जो है ज्वलंत सरसिज!
जिंदगी के दलदल-कीचड़ में धँसकर
वक्ष तक पानी में फँसकर
मैं वह कमल तोड़ लाया हूँ
भीतर से इसीलिए, गीला हूँ
पंक से आवृत
स्वयं मैं घनीभूत "

संघर्ष में विश्वास करने वाले कवि मुक्तिबोध की काव्य संवेदना आलोकमयी है। उसमें नवनिर्माण की आकांक्षा है, विश्वास भी है। अत: मुक्तिबोध की काव्य संवेदना में लक्षित होने वाले अंतर्विरोध भी एक सर्जनात्मक धरातल पर आधारित प्रतीत होती है। अंतर्विरोध की यह सर्जनात्मकता ही मुक्तिबोध की काव्य-संवेदना को अनुभूति की नई तराश प्रदान करती है और उसका संबंध जन -मन से जोड़ देती है-

गंध की सुकोमल मेघों में डूबकर
प्रत्येक वृक्ष से करता हूँ पहचान
प्रत्येक पुष्प से पूछता हूँ हाल-चाल,
प्रत्येक लता से करता हूँ संपर्क!![16]

संदर्भ सूची

1. आलोचना पत्रिका - संपादकीय, स. अपूर्वानंद, मुक्तिबोध विशेषांक
2. एक साहित्यिक की डायरी- मुक्तिबोध, पृ. 137
3. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. ,पृ. 73
4. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ.108
5. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ. 4
6. नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध- मुक्तिबोध, पृ. 35-36
7. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ. 39
8. कविताएँ- 1965 (कविता संकलन) स. अजित कुमार- विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 122
9. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ. 78
10. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ. 79
11. फिलहाल. अशोक वाजपेयी, पृ. 119
12. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ. 67
13. नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध- मुक्तिबोध, पृ. 37
14. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ. 22-23
15. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ.129
16. चाँद का मुँह टेढ़ा है, मुक्तिबोध, द्वि. स. पृ.88